शिक्षा की गिरती सेहत

मौजूदा समय शिक्षा के क्षेत्र में देश की स्थिति को अत्यंत नाजुक दौर में देख रहे हैं **गिरीश्वर मिश्र**

अब यह बात स्थापित हो चुकी है कि आर्थिक मोर्चे पर प्रगति के लिए कुशल मानव पूंजी अनिवार्य शर्त है, पर जब हम यह सोचते हैं कि यह कुशल या कौशलयुक्त मानव पूंजी कहां से आएगी तो हमारा ध्यान देश की शिक्षण संस्थाओं की ओर जाता है। उनकी स्थिति को देखकर निराशा ही हाथ लगती है। इन संस्थाओं का दिन प्रतिदिन बिगड़ता और गिरता स्वास्थ्य सभी के लिए चिंता का कारण बन रहा है। आज शिक्षा के क्षेत्र में देश की स्थिति बड़े नाजुक से दौर में पहुंच रही है। शिक्षा के अवसर अभी भी सीमित हैं। विद्यालयों, महाविद्यालयों से लेकर विश्वविद्यालयों और राष्ट्रीय स्तर के प्रौद्योगिकी संस्थानों तक में अध्यापकों की कमी एक गंभीर समस्या बन गई है। बिहार में हुए परीक्षा घोटाले ने सरकार द्वारा नियंत्रित परीक्षा व्यवस्था में जिस बड़े पैमाने पर संबंधित प्रशासन द्वारा प्रायोजित धांधली को उजागर किया है उससे वहां पर संपन्न हुई पूरी परीक्षा की विश्वसनीयता ही आज संदिग्ध हो उठी है। शिक्षा के साथ यह क्रूर मजाक कब से चल रहा होगा और समाज में अब तक कितना घुन लग चुका होगा, इसकी आज कल्पना भी नहीं की जा सकती। यह तो स्पष्ट है कि अकादमिक परीक्षा में अंक और वास्तविक बौद्धिक योग्यता के बीच का रिश्ता खंडित हो रहा है, पर इससे ज्यादा विचार की बात यह है कि जैसे-तैसे अधिकाधिक अंक पाने की होड़ क्यों बढ़ रही है। अपने बच्चों को अच्छा इंजीनियर, अच्छा डाक्टर या अधिकारी बनाने का सपना पाल रहे माता-पिता जिस शार्ट कट वाले नुस्खे को आजमा रहे हैं वह समाज को किस गर्त में ले जा रहा है, इसका अनुमान उन्हें नहीं है।

शिक्षा का एक चित्र दूसरे छोर पर हमारे सामने आता है जिसमें केंद्रीय माध्यमिक शिक्षा परिषद (सीबीएसई) की परीक्षा में छात्रों को मिलने वाले अत्यंत उच्च अंकों की भरमार ने महाविद्यालयों में प्रवेश पाने के इच्छुक छात्रों के बीच घमासान प्रतिस्पर्धा खड़ी कर दी है। यह एक दूसरे ही तरह की चुनौती पेश कर रही है। अब 95 प्रतिशत अंक पाने वाले छात्रों को भी यह भरोसा नहीं है कि उन्हें दिल्ली विश्वविद्यालय के किसी महाविद्यालय में मनोवांछित पाठ्यक्रम में दाखिला मिल ही जाएगा। छात्रों के ऊपर बड़ा दबाव है कि वे क्या करें, क्योंकि उत्तर भारत के जनसंख्या बहुल विभिन्न प्रदेशों में उच्च शिक्षा की बदहाली बढ़ती जा रही है। दिल्ली में प्रवेशार्थी छात्रों की बढ़ती भीड़ का कारण यहां पर अध्ययन की गुणवत्ता और साख के कारण है। निश्चित रूप से यहां कक्षाएं, पढ़ाई, परीक्षा और सामाजिक-सांस्कृतिक कार्यकलाप में

आंखें खोलने वाली हकीकत

- 95 प्रतिशत अंक पाने वाले छात्रों को भी यह भरोसा नहीं है कि उन्हें दिल्ली विवि के किसी महाविद्यालय में मनोवांछित पाठ्यक्रम में दाखिला मिल ही जाएगा

भागीदारी के अधिक अवसर प्राप्त होते हैं। अध्यापन के लिए अच्छे और पर्याप्त शिक्षक भी उपलब्ध है। हालांकि सरकारी नीतियों और राजनीतिक हस्तक्षेप के चलते यहां भी कठिनाई पैदा हो रही है। सामान्य अकादमिक शिक्षा से थोड़ा अलग हटकर जब चिकित्सा तथा इंजीनियरिंग आदि के पाठ्यक्रमों की ओर देखते हैं तो स्थिति और भयावह नजर आती है। कई स्तरों वाली प्रवेश-परीक्षा की तैयारी विद्यार्थी ही नहीं उसके पूरे परिवार के धैर्य और धन की परीक्षा लेने में कोई कसर नहीं छोड़ती है।

निजी शिक्षा संस्थान अधिकाधिक धन उगाही के माध्यम बन चुके हैं। प्रबंधन कोटे से डोनेशन लेकर इनमें कम प्रांक वाले छात्रों को भी प्रवेश मिल जाता है। इनमें से ज्यादातर ऐसे होते हैं जो सरकारी शिक्षण संस्थाओं की तुलना में सामान पाठ्यक्रम के लिए चौगुनी पांच गुनी फीस तो लेते हैं, परंतु तुलनात्मक दृष्टि से निम्न कोटि की आधी अधूरी ही शिक्षा देते हैं। बेहद खर्चीले होने पर भी छात्रों की किसी तरह की गुणात्मक अभिवृद्धि करने में वे असफल ही रहते हैं। ऊपरी चमक-दमक और ताम-झाम तो वहां रहता है, पर वे किस प्रकार की शिक्षा देते हैं, इसे लेकर सबके मन में संशय है। वे कैसे चरित्र वाले मनुष्य का निर्माण करते है, यह भी किसी से छिपा नहीं है। ऐसे माहौल में पढ़ लिख कर निकले और मुख्य सचिव जैसे ऊंचे ओहदों तक पहुंच चुके अधिकारियों में घूस और रिश्वत के बढ़ते मामलों को देख लोग बेचैन हो रहे है। कार्य के दायित्व-बोध और अकर्मण्यता की ग्लानि से कोसों दूर ऐसे लोगों की भीड़ बढ़ती ही जा रही है जो निजी लाभ पाने के चक्कर में समाज की प्रगति में रोड़े बनते जा रहे हैं। चरित्र की दृष्टि से इनकी दुर्बलताओं के किस्से आए दिन अखबारों की सुर्खियों के रूप में हमारे सामने उपस्थित होते हैं।

यदि अध्ययन विषयों में उत्कृष्टता की बात को छोड़ भी दें और उन मानवीय मूल्यों की बात करें जिनके विकास के लिए शिक्षा सिद्धांततः सपर्पित होती है या उसे समर्पित होना चाहिए तो स्थिति और भी निराशाजनक दिखाई पड़ती है। अब करुणा, सौहार्द, सद्भाव, दया, त्याग, सहभागिता और सहयोग जैसे मनोभावों के स्थान पर चिंता, दबाव, होड़, कलह तथा भेद-भाव को ही अधिक प्रश्रय मिल रहा है। इन्हीं की छत्र-छाया तले जीवन जीते यदि कई विद्यार्थी कुंठित और मनोरोगी हो जाते है तो कोई आश्चर्य नहीं। जो शिक्षा के परिसर से निकलते हैं उनमें से थोड़े से भाग्यशाली छात्रों को ही जीने की सीधी राह मिल पाती है, शेष तो भगवान भरोसे ही रहते हैं। अधिकांश शिक्षार्थियों के लिए शिक्षा क्लेशों से मुक्त न कर क्लेशों को बढ़ावा देने वाली साबित हो रही है। ऐसी स्थिति में छात्रों और अभिभावकों का मनोबल टूटने लगता है। अभिभावक कर्ज लेकर भी यह जरूर कोशिश करते रहते है कि उनके बच्चों को पढ़ाई के दौरान किसी तरह का कष्ट या पीड़ा न हो। तमाम तनावों से जूझती शिक्षा आज कराह रही है। सरकारों के लिए शिक्षा युवा वर्ग को कुछ समय तक बांधे रखने का एक खिलौना है। उनकी मजबूरी है कि इस झुनझुने को बजाते रहें चाहे कोई सुर निकले या न निकले। शासन की वरीयता के मुद्दों में में शिक्षा का नंबर तो बहुत बाद में आता है। दरअसल शिक्षा का प्रश्न केंद्र या राज्य के एजेंडे में मुद्दा ही नहीं बन पाता। वैसे भी आर्थिक रूप से शिक्षा की व्यवस्था करना कोई लाभप्रद सौदा नहीं है। इसमें तो निवेश करना पड़ता है जिसका कोई तात्कालिक प्रत्यक्ष लाभ नहीं मिलता है। आज शिक्षा की बदहाली के लिए कोई जिम्मेदारी लेने को तैयार नहीं। न समाज को फुर्सत है, न सरकार को और न ही शिक्षा के लाभार्थियों को ही कि समाज की आवश्यकता और व्यक्तिगत उन्नयन के लक्ष्यों के मद्देनजर शिक्षा व्यवस्था में आवश्यक सुधार किए जाएं और एक समर्थ और सशक्त भारत का सपना साकार हो सके।

(लेखक महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विवि के कुलपति हैं)

response@jagran.com